हिन्दी साहित्य
विविध आयाम

संपादक
रेखा रानी

अनुक्रम

	भूमिका	5
	शुभकामना संदेश / डॉ. नरेश कुमार सिहाग	7
1.	दलित साहित्य की अवधारणा **रेखा रानी**	11
2.	दलित साहित्य समाज और राजनीति **रमनदीप कौर / यशमीत कौर**	14
3.	रेखारानी के काव्य-संग्रह 'मेरे अहसास' में सामाजिक चेतना **डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट**	18
4.	दलित विमर्श के विविध सरोकार दलित कहानी के संदर्भ में **सपरनजीत कौर**	22
5.	स्त्री विमर्श एवं स्त्री संघर्ष **डॉ. आशीष श्रीवास्तव**	26
6.	जित देखो तित बोदे ही मरते हैं...(विजेन्द्र की लम्बी कविताओं में जीवनसंघर्ष) **डॉ. हरिहरानंद**	30
7.	आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-विमर्श **डॉ. अमनदीप कौर**	44
8.	चित्रा मुद्गल के उपन्यासों में अस्मितामूलक विमर्श **जीता पी. एटुरुत्तिल**	52
9.	आदिवासी (जनजाति समाज) विमर्श **बाबुलाल भूरा**	60
10.	हिन्दी उपन्यास में स्त्री विमर्श **अन्जू सिसोदिया**	91
11.	21वीं सदी दलित साहित्य **डॉ. किरण बी. कामाजी**	96

आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-विमर्श

डॉ. अमनदीप कौर
शोधार्थी
ईमेल– amanmaan956.am@gmail.com

स्त्री साक्षात शक्ति है। सृष्टि के विकास क्रम में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह सौंदर्य, दया, ममता, भावना, संवेदना, करूणा, क्षमा, वात्सल्य, त्याग एवं समर्पण की प्रतिमूर्ति है। इन्ही गुणों के कारण उसे देवी कहा जाता है। "यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमंते तत्र देवताः"। अर्थात् जहां नारियों का मान सम्मान होता है, वहां देवताओं का वास होता है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक भारतीय स्त्रियों की स्थिति में काफी उतार चढ़ाव आए है। वैदिक युग में नारी का जीवन काफी उन्नत एवं परिष्कृत था। ऋग्वेद में स्त्री को यज्ञ में ब्रह्मा का स्थान ग्रहण करने योग्य बताया है। रामायण और महाभारत काल में स्त्रियों का वर्णन विदूषियों के रूप में कम, गृहस्वामिनी के रूप में अधिक मिलता है। आधुनिक नारी बाहरी तौर पर काफी आगे पहुँची है, लेकिन जितना पहुँचना चाहिए था, वहां तक नही पहुँच पाई है। स्त्री विमर्श के युग में स्त्री की स्थिति में आये सब से महत्त्वपूर्ण परिवर्तन यह है कि वह पुरूष के समान ही जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत हैं, लेकिन इसके लिए उसे भी भीतर और बाहर दोनों और से टूटना पड़ता है। वह दिन भर नौकरी करके घर लौटती है, तो उसे पारिवारिक दायित्व भी निभाना पड़ता है। स्त्री विमर्श के विषय में जगदीश्वर चतुर्वेदी ने लिखा है– "स्त्री साहित्य वस्तुतः स्त्री की अनुभूति का साहित्य है यह ऐसी अनुभूतियां हैं, जो अभी तक दबी हुई थी, दमित थी, उत्पीड़ित थी।"[1]

स्त्रीवादी साहित्य के दायित्व को रेखांकित करते हुए वे लिखते है– "स्त्री की व्यक्ति के रूप में अस्मिता को स्थापित करना, उसकी संवेदनाओं, भावों एवं विचारों को अभिव्यक्ति देना स्त्री साहित्य का बुनियादी दायित्व है।"[2] वह अगर इस दायित्व को भली भांति निभाता है तो नारी को उसकी

पारंपरिक भूमिकाओं में से बाहर निकालकर स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान करने में जरूर सहायता मिलेगी।

'स्त्री–विमर्श', स्त्री की शोषण से मुक्ति चाहता है, ताकि वह स्वतंत्र ढंग से जी सके और सोच सके। वह पूर्ण स्वाधीन हो। समाज की निर्णायक शक्ति हो। कात्यायनी के अनुसार– "स्त्री विमर्श अथवा नारीवाद पुरुष व स्त्री के बीच नकारात्मक भेदभाव की जगह स्त्री के प्रति सकारात्मक पक्षपात की बात करता है। वस्तुतः इस रूप में देखा जाए तो स्त्री विमर्श अपने समय और समाज के जीवन की वास्तविकताओं तथा संभावनाओं की तलाश करने वाली दृष्टि है।"[3] स्त्री विमर्श के बारे में लता शर्मा कहती हैं कि "स्त्री विमर्श स्त्री को स्वयं को देखने जाँचने–परखने का पर्याय है। आज तक हम अपने बारे में, अपनी आशाओं– आकांक्षाओं के बारे में जो कुछ भी जानते हैं, किसी संत–महात्मा, विचारक, मनीषी का लिखा–पढ़ा है स्वयं को अपनी ही दृष्टि से तौलने, परखने का यह नवीन आयाम है।"[4] स्त्री विमर्श से संबंधित मैत्रेयी पुष्पा का विचार है कि "नारीवाद ही स्त्री विमर्श है, नारी की यर्थाथ स्थिति के बारे में चर्चा करना ही स्त्री विमर्श है"[5]

नारीवादी लेखन आज के समय की जरूरत है, आधुनिकता और उदार सोच के तमाम दावों के बावजूद स्त्री की सामाजिक स्थिति या उत्थान में कोई बड़ा क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं आया है। आज भी वह समझौतों और दोहरे कार्यभार के बीच पिस रही है। पुरुष सत्ता की नींव हमारे समाज में बहुत गहरे तक धंसी हुई है, इसे तोड़ना, बदलना या संवारना एक लंबी लड़ाई है। पुरुषों की निगाहों में स्त्रियां उपेक्षिता ही रही है। पुरुषों ने उनके स्वतंत्र व्यक्तित्व के निर्माण के लिए कोई सुविधा नहीं दी है। जब स्त्रियां मानवीयता के प्रति प्रतिवाद करती हैं, तो उसकी स्वतंत्रता को नकारात्मक अर्थों में ही ग्रहण किया जाता है। समाज में आज भी समूचे मूल्य पुरुष द्वारा निर्मित है। इस सन्दर्भ में मैत्रेयी पुष्पा जी का वक्तव्य यह है कि "पुरुष के लिए सबसे बड़ी चुनौती स्त्री है। उसको वश में करने के लिए वह जिंदगी भर न जाने कितने प्रयास करता है कि किसी तरह औरत के वजूद को तोड़ सके।"[6]

स्त्री–चिंतन आज विश्व चिंतन की बहस में सबसे सशक्त चिंतन इसलिए है कि इसमें अरबों, करोड़ों स्त्रियों के दमन, अन्याय एवं उत्पीड़न से मुक्ति की सोच निहित है। आधुनिक हिन्दी उपन्यासकारों में विचारों की परिपक्वता और गहन मानवीय संवेदना को उकेरने की कला में मैत्रेयी पुष्पा काफी चर्चित है। मैत्रेयी पुष्पा के समूचे कथा साहित्य में नारी अपनी अस्मिता और अस्तित्व के लिए संघर्ष करती दिखाई देती है। यह संघर्ष समाज से है,

रूढ़ियों से है, थोपी गई परंपराओं से है और पुरुष की अहं में लिपटी मानसिकता से है। पुष्पा जी की नारियां स्वयं ही अपनी लड़ाई लड़ती हैं और पुरुष के वर्चस्व को तोड़ने का प्रयास करती है। 'इदन्नमम' उपन्यास की नायिका मंदा अकेले ही सारे पुरुष समाज से टकराती है, अपने ऊपर हो रहे अन्याय और अत्याचार को वह चुपचाप सहन नहीं करती, अपितु उसका मुकाबला करती है। 'इदन्नमम' में परित्यकता कुसुमा का दाऊ जी के साथ संबंध रखना बहुत बड़ा कदम है। इस संबंध मे कुसुम मंदा से कहती है कि "बिन्नु यह जल निर्मल है या मैला? पवित्र है या पाप का? इमरत है विष? नहीं जानते हम। तुम्हारी रामायण में लिखा भी होगा तो लिखने वाला यह नहीं जानता है कि आदमी जब प्यासा होता है, प्यास से मर रहा होता है, तो कहां देखता है, कहां सोचता है, कहां करता है कोई भेद? कोई अंतर?"[7] कुसमा के मन में दाऊ जी के साथ अपने संबंध को लेकर कोई अपराध बोध की भावना नहीं है।

'शाल्मली' नासिरा शर्मा का बहुचर्चित उपन्यास है जिसमें घर और बाहर अपने अधिकार मांगती आजादी के बाद की उभरती एक अलग किस्म की स्वतंत्रचेता स्त्री है, जो पति से संवाद चाहती है, बराबरी का दर्जा चाहती है, प्रेम की मांग करती है, जो उसका हक है। इस पात्र का सृजन बेहद सूझबूझ से किया गया है और यह पात्र आधुनिक स्त्री के एक बहुत बड़े वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। शाल्मली समय से पहले जीवन संघर्ष में कूद पड़ी थी। कम उम्र में ही कामकाजी लड़की बनी चुकी थी। उम्र से ज्यादा उसमें एक गंभीरता आ चुकी थी। वह नरेश को पूरी तरह समझ गई थी, लेकिन सवाल समझने का नहीं, उसके नाकारात्मक व्यक्तित्व में अपने विकास को ढूढ़ने का था। नरेश की राय में घरेलू काम पत्नी की जिम्मेवारी थी। शाल्मली बुखार होने के बावजूद भी नरेश के दोस्तों को खाना बनाकर देती है। नरेश को पत्नी की बीमारी से अधिक दोस्तों की चिंता सताती है। सारे दोस्त जाने के बाद काम में कुछ मदद करने के लिए अनुरोध करने से वह कहता है कि "घर औरत का होता है, वह जाने। कमाना मर्द का काम है, वह मैं करता हूँ। आफिस के काम में तुम्हारी सहायता लेता हूँ क्या? ओ.के. गुडनाईट"। [8]

सूर्यबाला का प्रमुख उपन्यास 'यामिनी की कथा' स्त्री मन की तीव्र संवेदनात्मक धरातल से विकसित होता है। इसमें यामिनी का मानसिक संघर्ष चित्रित किया गया है। यामिनी मामूली स्त्री नहीं है। वह अपने पति विश्वास से जो प्यार चाहती है, वह शारीरिक से ज्यादा मानसिक है। विश्वास मानता है कि वह अपनी पत्नी की सारी ख्वाहिशें पूरी कर रहा है। इससे ज्यादा देने

के लिए उसके पास कुछ भी नहीं है। यामिनी पूछती है कि "तो मेरी सबसे बड़ी विडंबना यही है कि मैं आपके जीवन में तब आई जब आपके पास देने–लेने के लिए कुछ है ही नहीं।"[9] यह सुनकर विश्वास को गुस्सा आता है उसे लगता है कि यामिनी ने उसके पुरुषत्व को चुनौती दी है। लेकिन यामिनी स्पष्ट करती है कि "सुनिए मैं शरीर की बात नहीं कर रही। आपके शरीर ने मुझे बहुत कुछ दिया, लेकिन पुरुषत्व को सिर्फ शरीर की सीमा में बांधकर नहीं देखती। आप भी ऐसा कर उसकी बेइज्जती मत कीजिए। पुरूषत्व की सीमा शरीर से कहीं ज्यादा भव्य होती है। मैं इसी भव्यता और ऊँचाई की बात कर रही हूँ।"[10] यामिनी की बात को समझने की क्षमता विश्वास में नहीं है।

'ठीकरे की मंगनी' में लेखिका नासिरा शर्मा ने 'महरूख' की संघर्ष यात्रा का चित्रण किया है। महरूख ने गांव की औरतों का दिल जीत लिया था। वह कमजोर बच्चों को शाम को घर बुलाकर पढ़ाती थी। महरूख के सामने जिंदगी की सिर्फ एक मंजिल थी, वह थी स्कूल। अलका का यह आत्मसमर्पण देखकर डॉ. विमला कहती है कि "मेरा विश्वास है कि तुम जरूर कोई महान आत्मा हो, जा बिरले ही धरती पर जन्म लेती है।"[11] 'ठीकरे की मंगनी' की महरूख मे अकेलेपन को पीड़ा, संत्रास, कुंठा नहीं है। उसे इस बात का अहसास है कि उसकी जिंदगी आगामी पीढ़ी के लिए एक उदाहरण है। महरूख का कथन आधुनिक नारी की सोच को दिखाता है जो समय की धारा में, भविष्य के लिए नई संभावनाओं के द्वार खेलकर स्त्री को एक स्वतंत्रा अस्तित्व प्रदान करती है। सार्वजनिक भूमिका में स्व को अर्जित करने में एक स्त्री को संघर्ष के जिस कठिन रास्ते पर चलना पड़ता है वह पूर्ण रूप से महरूख के माध्यम से दर्शाया गया है।

'मन्नू भंडारी' का उपन्यास 'आपका बंटी' हिन्दी साहित्य में मील का पत्थर है, जो अपने समय से आगे की कहानी कहता है और हर समय का सच होने के कारण कालातीत भी है। शकुन के जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी यही है कि व्यक्ति और मां के इस द्वंद्व में वह न पूरी तरह व्यक्ति बनकर जी सकी, न पूरी तरह मां बनकर। और यही शकुन की त्रासदी है। अपने व्यक्तित्व को पूरी तरह नकारती हुई, अपने मातृत्व के लिए संबंधों के सारे नकारात्मक पक्षों को धकेलती हुई या उन्हें अनदेखा करती हुई हिंदुस्तान की हजारों औरतों की यही त्रासदी है।

आधुनिक हिंदी में उपन्यासों में लेखिकाओं ने नारी और उसके दिमाग में चल रहे आत्ममंथन के स्वर को नई दिशा दी है। कृष्णा सोबती के 'डार

से बिछुडी', 'मित्रो मरजानी', 'दिलो दानिश,' 'जिंदगीनामा' जैसे उपन्यासों में परिवार, रिश्तेदारी के साथ दांपत्य और यौन तृप्ति के लिए दिशाहीन हो रही स्थितियों को बड़े ही सूक्ष्म ढंग से चित्रित किया गया है। 'दिलों दानिश' उपन्यास में विवाहेत्तर संबंधों को देखा जा सकता है। विवाह होते हुए भी कृपानारायण का महकबानो से संबंध है। वैसे वकील साहब के जीवन में पहली औरत महक है और दूसरी औरत उनकी पत्नी। लेकिन पहली होकर भी महक दूसरी औरत ही मानी जाएगी। यही नहीं .पानारायण स्वयं भी स्वीकारता है कि "अपनी बात करें एक मुसलमानी है, दूसरी मुसलमानी नहीं हिंदुस्तानी है"। [12]

कृष्णा सोबती' ने 'मित्रो मरजानी', 'डार से बिछुडी', 'दिलो–दानिश' और 'जिंदगीनामा' में ग्रामीण एवं नगरीय परिवेश में जी रहे संयुक्त परिवारों के यथार्थ को बड़ी सादगी से रूपायित किया है। परिवारिक ढांचे के चरमराहट को 'सूरजमुखी अंधेरे के' उपन्यास में देखा जा सकता है। यही नही, नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के वैचारिक मतभेद और वैधव्य की त्रासदी को भी बड़ी सादगी से चित्रित किया है। 'मित्रो मरजानी' में मित्रो के माध्यम से अतृप्ति और काम तृप्ति की स्थितियां व्यक्ति को कहां से कहां पहुंचा देती है। मित्रो इसकी जीती जागती प्रमाण है। व्यक्ति के लिए यौन तृप्ति भी उतना ही आवश्यक है जितना पेट का भूख का मिटना। डॉ. साधना अग्रवाल के अनुसार "सोबती सुखी दांपत्य जीवन के लिए यौन तृप्ति न होने के कारण ही व्यक्ति इधर–उधर भटकता है और अनुचित मार्ग पर चलने को मजबूर हो जाता है। "[13]

उषा प्रियम्वदा के 'पचपन खंभे लाल दीवारें' की सुषमा की टीस, 'रुकोगी नहीं राधिका' की राधिका का निरंतर गतिमान बने रहना तथा 'शेष यात्रा' आदि के पात्र पढ़ लिखकर कहीं ना कहीं अंधविश्वास और रूढ़िवादिता से पूर्णत मुक्त नही हो पाते। 'शेष यात्रा' उपन्यास में अनु के पति पेशे से एक प्रतिष्ठित डॉक्टर हैं। रुपए पैसे, सभी सुख–सुविधाओं के बावजूद भी अनु डॉक्टर साहब के दिल में अपना स्थान नहीं बना पाती है। प्रणव के व्यवहार से दुखी ही नहीं होती है अपितु अपना मानसिक संतुलन भी खो देती है। अनु किसको कोसे अपने को या अपने भाग्य को "अभी तक इतना सब कहां दबा हुआ था, दिल के किस कोने में गड़ा हुआ था इतना–इतना सारा, प्यार इतना–इतना? उसे अब किसी ओर की जरूरत नहीं है। वह सब भूलती जा रही है। उसकी दुनिया में किसी चीज की कमी नही है, न महंगाई, न भूख, न अकाल उनके चारों तरफ एक जुलुस है, बीच में वह दोनों है। "[14]

साहित्य नारी की सुरक्षा की कीमत देकर इंसाफ हासिल करने के लिए जमीन आसमान एक कर रहा है। अतीत के दस्तावेजों को इकट्ठा कर आधुनिक युग की बैचेन औरतों पर साहित्य प्रकाश डाल रहा है। और अपने सपनों को यथार्थ का रूप देने का प्रयास कर रहा है। साहित्य के पृष्ठों पर दर्ज स्त्री चरित्र असंतोष और वेदना से भरा है। वह पुरूष निर्मित इस समाज में स्वतंत्रता और सम्मान चाहती है।

हिन्दी उपन्यास साहित्य की आधुनिक लेखिकाओं में निरूपमा सेवती आती है। उनके लेखन में नारी विमर्श की बात उभरकर सामने आई है। 'पतझड की आवाजें' उनका प्रथम उपन्यास है। उपन्यास की नायिका अनुभा आधुनिक सत्व और स्वाभिमान का प्रतिनिधित्व करती है। आर्थिक विपन्नता के कारण अनुभा के परिवार को एक ऐसे मोहल्ले में रहना पड़ता था, जो बदनाम था। हमारे यहां भ्रष्ट माहौल में स्त्रियों के लिए केवल प्रतिभा के बल पर आगे बढ़ना मुश्किल सा होता जा रहा है। जो स्त्री अपने शरीर के चेक को भुनाती है, वह आगे निकल जाती है और जो यह नहीं कर सकती उसकी नियति में पिछड़ना ही रहता है, उनका कहना है कि "इस मर्द जाति के साथ तभी सोओ, अगर माल हासिल होता हो या पोजीशन हासिल होता हो।"[15] लेकिन अनुभा को अपनी नारी सम्मान की रक्षा के लिए दोनों नौकरियां छोड़नी पड़ती है। वह अपने आस–पास के माहौल तथा नारी के गिरते जीवन मूल्यों से बहुत परेशान एवं दुखी रहती है।

ममता कालिया के उपन्यास 'बेघर' और 'एक पत्नी के नोट्स' में एक मध्यवर्गीय पढ़ी–लिखी महिला का भी अपने पति द्वारा एक सामान्य औरत की तरह ट्रीट किया जाना और गाहे–बगाहे व्यंग्य का शिकार होना तथाकथित प्रगतिशील और पढ़े–लिखे वर्ग को बेनकाब करता है। मृदुला गर्ग का 'अनित्य' जिसमें दो महत्त्वपूर्ण स्त्री पात्रों में से एक काजल एक फेमिनिस्ट प्राध्यापक की तरह उभरती है जो अनलिखे इतिहास को दुबारा लिखना चाहती है, भगत सिंह के सिद्धांतों पर विश्वास करती है और उसे पढ़ाती है। हालांकि वह उनके कोर्स में नहीं है, संगीता जो एक वेश्या की बेटी है पर अपने सिद्धांत खोती नहीं। मृदुला गर्ग का 'चितकोबरा' जिसमें एक औरत और एक लेखिका के दोनों पहलुओं की कश्मकश का बड़ी बारीकी से चित्रण किया गया है।

साहित्यकार सुरेंद्र वर्मा का उपन्यास मुझे 'चांद चाहिए' सर्वथा नूतन परिवेश और शिल्प पर आधारित बहुत ही चर्चित उपन्यास है। इसमें प्रमुख रूप से नारी और पुरुष के समस्याओं को दिखाया गया है। 'वर्षा वशिष्ठ'

उपन्यास की नायिका और प्रमुख पात्र है। वह अत्यंत महत्त्वाकांक्षी, दृढ़ निश्चयी और अपूर्व साहसी होते हुए भी वह परिवार और समाज से विद्रोह करते हुए अपना भविष्य स्वयं तय करती हुई निरंतर आगे बढ़ती चली जाती है। उसका घर वालों की तरफ से रखा गया नाम यशोदा शर्मा था, परंतु यह नाम उसे पसंद न होने के कारण वह स्वयं अपना नामकरण वर्षा वशिष्ठ करती है। लेकिन जब पिता पूछते हैं कि तुम्हारे नाम में क्या खराबी है कि तुमने अपना नाम बदलकर वर्षा वशिष्ठ रखा, तो वह बताती है कि, "हर तीसरे चौथे नाम में शर्मा लगा होता है। मेरे क्लास में ही सात शर्मा है। और यशोदा? घिसा पिटा, दकियानुसी नाम। उन्होंने किया क्या था? सिवा कृष्ण को पालने के। "[16] अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वह निरंतर आगे बढती रही। आगे बढने की चाह उसे 'नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा' तक पहुचा देती है। समाचार पत्रों में भी उसकी चर्चा की जाती है– "शाहजहांपुर की मुमताज पर लखनऊ को भी नाज है। "[17]

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' उपन्यास वर्मा जी का प्रसिद्व उपन्यास है। इस उपन्यास में वर्मा जी दो जिंदगी जीने वालों की तमन्ना को दो व्यक्तियों के माध्यम से व्यक्त करते हैं। शिक्षित सुन्दर नील और अल्पशिक्षित भोला अधिक कमाने की चाह में बम्बई आते हैं। और अपनी योग्यता के अनुसार जिंदगी बेहतर बनाने की कोशिश में लग जाते हैं। "अपनी जिंदगी बदलने की चाह सबका मूल अधिकार है। "[18] भोला अंडरवर्ल्ड की दुनिया में धीरे–धीरे धसता जाता है। नील मिसेज दस्तुर का शोध सहायक बनकर अपने जीवन की शुरूआत करता है। लेकिन दोनों ही आदर्शों की दुनिया से दूर होते–होते, अपने मूल्यों को बेच रहे हैं। नील पुरुष वेश्या के रूप में कार्य करने लगता है। सुख की सारी सुविधाएं अब उसके पास है, लेकिन अब उसके पास आत्मसम्मान नहीं रह गया। नील की वेश्यावृति कुमुद से शुरू होकर कुंतल, स्टेला, रंभा, कृष्णा, शिल्पा, पारुल से होते हुए नैना पर रूक जाती है। पारुल नील से बेइंतहा मोहब्बत करती है। लेकिन पारुल का नामी घराना सुपारी देकर नील की हत्या करवा देता है। भोला के सामने नील की दर्दनाक मौत उसे स्तब्ध कर देती है। "आदमी की जिंदगानी भी क्या है? कल भविष्य के सपने देख रहे थे, आज फुंक रहे है। "[19]

स्त्री का संघर्ष पुरूष से नहीं है, बल्कि उसकी लडाई उस पूरी सामाजिक व्यवस्था, तंत्र और मानसिकता से है जिसने सभ्यता के विकास की आरम्भिक स्थिति से ही पुरूष की तुलना में स्त्री को कमतर, कमजोर और पुरूष पर निर्भर रूप से देखा। आज के बदलते दौर में जीवन मूल्य बदल रहे

हैं। स्त्रियों के जीवन में कुछ समस्याएं ऐसी हैं जो सामाजिक व्यवस्था से उत्पन्न हुई है। और कुछ समस्याएं ऐसी है जो स्त्री होने के कारण उत्पन्न हुई है। ये समस्यायें पितृसतात्मक व्यवस्था द्वारा दी गई हैं। सामाजिक दृष्टिकोण नही बदलेगा तो समस्यायें बनी रहेगीं। मैत्रेयी पुष्पा के शब्दों में "आने वाली सदी की मांग है कि पुरुष मानसिकता में परिवर्तन आए और वह बेझिझक किसी भी आशंका और असुरक्षा से मुक्त होकर आती हुई स्त्री का स्वागत करे। मेरे विचार से यह सदी स्त्री के अस्थत्व की थी, अगली शताब्दी उसके व्यक्तव्या की होती। "[20]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. स्त्रीवादी साहित्य विमर्श– जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 5
2. वही, पृ. 8
3. हंस – मार्च 2000, पृ. 45
4. औरत अपने लिए – लता शर्मा, पृ. 149
5. हंस – अक्तूबर 1996, पृ. 75
6. चर्चा हमारी – मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 21
7. इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 92
8. शाल्मली – नासिरा शर्मा, पृ. 33
9. यामिनी की कथा – सूर्यबाला, पृ. 32
10. वही, पृ. 33
11. ठीकरे की मंगनी – नासिरा शर्मा, पृ. 146
12. दिला दानिश – कृष्णा सोबती, पृ. 38
13. वर्तमान हिन्दी महिला कथा लेखन और दाम्पत्य जीवन – डॉ. साधना अग्रवाल, पृ. 25
14. शेष यात्रा – उषा प्रियम्वदा, पृ. 25
15. पतझड़ की आवाजें – निरूपमा सेवती, पृ. 95
16. मुझे चांद चाहिए – सुरेन्द्र वर्मा, पृ. 16–17
17. वही, पृ. 73
18. दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता – सुरेन्द्र वर्मा, पृ. 15
19. वही, पृ. 247
20. खुली खिडकियां – मैत्रेयी पुश्पा, पृ. 115